परिवार या सरकार:

वीणा शिवपुरी,

किसी भी कानून की बात करते समय हमें उसे अपने समाज के हालात को ध्यान में रखते हुए परखना चाहिए।

— यह कानून उन शहरी पढ़ी-लिखी औरतों पर ही लागू नहीं होगा जो वैसे ही कम बच्चे पैदा कर रही हैं, बल्कि उन लाखों निचले दर्जे की औरतों पर भी, जिनके हाथ में फ़ैसले लेने की ताकत नहीं है। उनके कितने बच्चे हों यह वे तय नहीं कर सकतीं, बल्कि उनके पति या ससुराल वाले करते हैं।

— उनके बच्चों के बचपन में ही मर जाने की संभावनाएं कहीं अधिक हैं। उनके पास पोषण, अच्छा इलाज आदि की सुविधाएं नहीं हैं। अगर सरकार उनके बच्चों का जीवित रहना सुनिश्चित नहीं कर सकती तो उनकी संख्या तय करने का उसे क्या हक़ है?

— औरतों के हक़ों की लड़ाई में बड़ी मुश्किल से पाई गई सहूलियतें छीनने का मतलब है उन्हें पीछे धकेल देना। उनकी लड़ाई को नाकारा कर देना।

— छोटे परिवार या कम जनसंख्या करने का सारा बोझ, सारा दबाव औरत पर ही क्यों डाला जाता है? सरकार की हर नीति, हर कोशिश औरतों को ही अपना शिकार क्यों बनाती है? चाहे वह हानिकारक परिवार नियोजन के साधन हों या इस तरह का कानूनी दबाव। औरत तो दोनों तरफ से मारी जाती है। एक तरफ पितृसत्तात्मक परिवार है तो दूसरी तरफ पितृसत्तात्मक सरकार। दोनों संस्थाएं औरत की रक्षक होने का ढोंग करते हुए उसे अपनी मर्ज़ी मुताबिक चलाना चाहती हैं।

सरकार की दोरुखी नीतियां

एक तरफ सरकार औरतों की बेहतरी और तरक्की के लिए काम करने का दम भरती है। दूसरी तरफ ऐसे-ऐसे कदम उठाती है जो औरतों की थोड़ी बहुत सहूलियतों को भी छीनने वाले हैं। हाल में श्रम मंत्रालय ने मातृत्व लाभ कानून में बदलाव लाने का प्रस्ताव रखा है जिसके तहत तीसरा बच्चा होने पर नौकरीपेशा औरतों को मिलने वाली सवेतन छुट्टी और अन्य सहूलियतें नहीं दी जाएंगी। इस प्रस्तावित बिल ने पूरे देश में ज़ोरदार बहस चालू कर दी है।

ऊपरी तौर पर ऐसा मालूम देता है कि कानून में इस तरह का बदलाव लाने से औरतें अधिक बच्चों के बोझ से बच जाएंगी। इसी भुलावे के कारण बहुत सी औरतें भी इस बिल का समर्थन कर रही हैं। लेकिन साथ ही देश की अनेक महिला संस्थाएं इस बिल का कड़ा विरोध भी कर रही हैं।

— सौ बात की एक तो यह है कि औरत का शरीर, उसकी प्रजनन शक्ति उसकी अपनी है। अब तक परिवार उसे अपने काबू में रखना चाहता था। अब सरकार उसे मुट्ठी में करना चाहती है। एक शोषक से छुटकारा मिलने के स्थान पर नए शोषक मजबूत हो रहे हैं। इस तरह के दबाव का विरोध होना चाहिए। औरतों से संबंध रखने वाला कानून बग़ैर औरतों की राय लिए, कैसे बनाया जा सकता है?

औरत पर दोहरी मार

जुही जैन

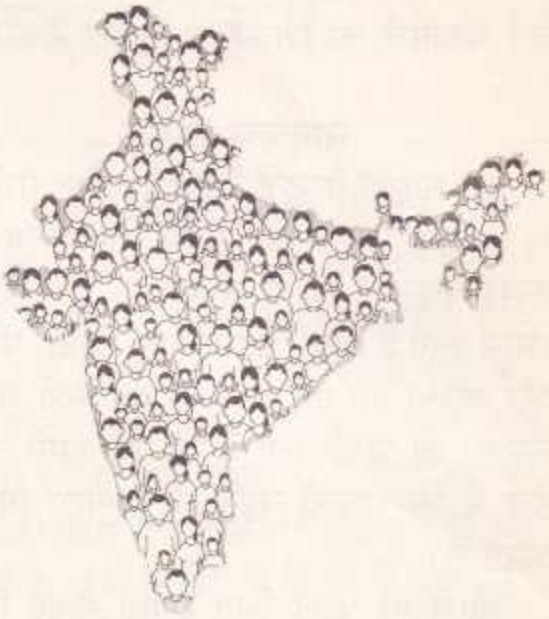

आने वाले खतरे

मातृ लाभ कानून 1961 से यह उम्मीद की गई थी कि गर्भवती औरतों को सुविधा मिलेगी। औरतों के रोज़गार की रक्षा हो सकेगी। उनका दर्जा सुधरेगा। यदि इस कानून को बदला जाता है तो वे पुराने उद्देश्य खत्म हो जाते हैं।

इस कानून के बदल दिए जाने से लोगों की बच्चों की ज़रूरत या बेटे की इच्छा खत्म हो जाएगी, ऐसा सोचना भूल है। या तो अधिक गर्भपात करवा कर दो बेटे पाने की कोशिश होगी या फिर औरत नौकरी और बच्चे पैदा करने के दबाव में पिस जाएगी। लड़के और लड़कियों का अनुपात और बिगड़ेगा। औरतों के ऊंचे पदों पर पहुंचने या नौकरी में तरक्की करने के अवसरों को धक्का लगेगा। बच्चा पैदा करने के चौथे या छठे दिन उन्हें मजबूरन काम पर लौटना पड़ेगा। या फिर उनकी नौकरियां छूट जाएंगी। मध्यवर्गीय औरतों को घरेलू बनने पर विवश किया जाएगा। यानि कुल मिला कर उनकी आर्थिक मजबूती का पाया तोड़ कर उन्हें लाचार और बेबस बनाने की साजिश है यह।

महिला संगठनों का नज़रिया

महिला संगठन इस संशोधन को औरत विरोधी मानते हैं। वे जनसंख्या नियंत्रण के खिलाफ़ नहीं हैं। विरोधी हैं तो जबरन औरत पर जिम्मेदारी थोपने से। उनके अनुसार यह कदम औरत की बच्चे पैदा करने की शक्ति पर नियंत्रण है। बड़े परिवार के लिए सिर्फ औरत को दोषी ठहराना गलत है। बच्चे पैदा करने के लिए ज्यादातर समय मर्द की रजामंदी जरूरी है। बहुत ही छोटे पैमाने पर यह हक़ औरत के हाथ में है।

नौकरी नहीं, कमजोरी

सरकार का यह दावा बिल्कुल गलत है कि नौकरी के अवसर औरतों के लिए इसलिए कम हैं क्योंकि वह बार-बार प्रसूति अवकाश लेती हैं। रोजगार के अवसर पुरुषों की तुलना में औरतों के लिए कम होते हैं। यह कोई गारंटी नहीं कि इस संशोधन के पास होते ही औरतों को नौकरी के ज्यादा मौके मिलेंगे। ग़ैर-सरकारी क्षेत्रों में मालिकों के पास प्रसूति सुविधाएं न देने के कई तरीके हैं।

महिला संगठनों का मानना है कि इस कानून का सीधा असर मां और बच्चे की सेहत पर होगा। आर्थिक परेशानियों के कारण मां को बच्चा जनने के कुछ ही दिन बाद काम पर लौटना पड़ता है। जब तक मां की शारिरिक हालत ठीक नहीं होगी,

साथ ही बच्चे को दूध न पिला सकने से बच्चा कई बीमारियों का शिकार हो सकता है।

सामूहिक विरोध

कुछ महिला संगठनों ने इस प्रस्तावित संशोधन के खिलाफ एक संयुक्त बयान जारी किया है। उनका कहना है कि वे सरकार के उस रवैये का विरोध करते हैं जिसमें वह रोज़गार, शिक्षा, पोषण और स्वास्थ्य जैसे मुद्दों को नकार कर सिर्फ आबादी नियंत्रण को प्राथमिकता दे रही है। इससे ज़ाहिर होता है कि आबादी बढ़ने की जिम्मेदार सिर्फ ओरतें हैं।

औरतों को पहले सेहत संबंधी सेवाएं मुहैया कराई जाएं। गर्भ निरोधकों से होने वाले नुक्सानों की जानकारी दी जाए। फिर सरकार नियोजन की बात करे। सरकार का यह संशोधन संविधान का उल्लंघन करता है। एक तरफ संविधान औरतों के कल्याण के लिए विशेष प्रावधान तय करने की जिम्मेवारी सरकार के हाथ में देता है, वहीं सरकार इसी संविधान को नज़र-अंदाज कर देती है। महिला संगठनों ने राष्ट्रीय महिला आयोग से भी जवाब मांगा है क्योंकि आयोग ने बिना महिला संगठनों से विचार किए इस संशोधन को मंजूरी दे दी है। विडम्बना तो यह है कि यह आयोग औरत के हक़ों को दिलाने के लिए बनाया गया है।

ज़रूरत जागृति की

महिला संगठनों का नज़रिया सरकार के पितृसत्तात्मक रवैये के खिलाफ़ है। दूसरी ओर सरकार आबादी पर काबू पाने के लिए चुप्पी साधे हुए इस कानून को पारित करने की कशमकश से जूझ रही है। सरकार जानती है कि यह कानून औरत के मानव-अधिकारों का हनन करता है। फिर भी विश्व बैंक के दवाब से अंतर्राष्ट्रीय फंड का एक बड़ा हिस्सा औरत की सेहत को दरकिनार करके नॉर-प्लांट, डेपो-प्रोवेरा और नेट-एन जैसे खतरनाक गर्भ-निरोधकों पर खर्च कर रही है। सरकार को चाहिए कि वह इस संशोधन पर पुनर्विचार करे। संशोधन की अपेक्षा, शिक्षा के माध्यम से छोटे-परिवारों के लिए चेतना जागृति करे। साथ ही दो बच्चों तक सीमित परिवारों को 'इंसेंटिव' देने की घोषणा करे।

चलो, हम सब मिल कर इस मुद्दे पर बात करें। आखिर इसका सीधा संबंध हमारे शरीर से है। हमारे सुख-दुख से है। हमें इस पर सोचने और बोलने का पूरा हक़ है। जिसमें हमारा भला नहीं वह हमें मंजूर नहीं। □